IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय सुगम संगीत की प्रचलित गेय विधाओं का संक्षिप्त अध्ययन

अंजलि चौहान (Anjali Chauhan)
शोध छात्रा (संगीत विभाग)
दयालबाग शिक्षण संस्थान,
दयालबाग, आगरा–282005
प्रो0 रश्मि श्रीवास्तव (prof. Rashmi Shrivastava)

अध्ययन

भारतीय संगीत का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। इसका आरम्भ वैदिककाल से माना जाता है। जितनी प्राचीन हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति है, उतना ही विस्तृत एवं विशाल यहाँ के संगीत का इतिहास है। भारतीय संगीत को अनादि माना गया है और वेदों के समान उसकी प्रतिष्ठा हुई है–

आदि नाद अनहद भयो, तासे उपज्यो वेद।
मुनि पायो या वेद से, सकल सृष्टि को भेद।।

संगीत को दो धारायें साथ–साथ चलती रहीं है– वैदिक संगीत जो अनादि, अपौरूषेय, अत्यंत पवित्र, व्यवस्थित, नियमबद्ध और अपरिवर्तनीय था। वेदों का सस्वर–पाठ उसका रूप था। यह सस्वर पाठ 'समगन' कहलाता था। दूसरी धारा वह थी जो समयानुरूप मनुष्य द्वारा निर्मित थी जिसके नियमों में शिथिलता थी, जो लोक रूचि के अनुकूल और परिवर्तनशील था, वह लौकिक संगीत था।

संगीत शब्द गी (गै) धातु में 'सम' उपसर्ग तथा 'क्त' प्रत्यय लगाकर बना है। अर्थात् सम+गी+क्त = संगीत इसीलिए शाब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर संगीत का अर्थ हुआ – भली भाँति गाने योग्य – 'सम्यक् गीतम् संगीतः' किन्तु इस उक्ति से संगीत का पूर्ण अर्थ स्पष्ठ नहीं हो पाता। जन साधारण में संगीत के विषय में जो मान्यता प्रचलित है उसके अनुसार गाने–बजाने को ही संगीत कहते हैं। किन्तु यह भी संगीत का बाह्य पक्ष ही दर्शाता है।

संगीत परिभाषा – महर्षि व्यास ने चौसठ कलाओं के अन्तर्गत 'गन' विधा को प्रथम, वाद्य को द्वितीय एवं नृत्य विधा तृतीय स्थान प्रदान किया है। इसी क्रम को संगीत रत्नाकर में पंडित शारंगदेव ने संगीत की परिभाषा देते हुए लिखा है – ''गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'' अर्थात्

गायन वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं के सम्मिलित रूप को संगीत कहते है। संगीत की इसी परिभाषा का अनुकरण प्राचीन काल से वर्तमान तक होता आ रहा है।

पंडित शारंगदेव ने स्वकृत संगीत रत्नाकर में गायन–वादन एवं नृत्य में गायन विधा को श्रेष्ठ माना है–

'नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च।
अतो गीतं प्रधानत्वादत्रा दावभिधीयते।।'

अर्थात् गायन के अधीन वादन, वादन के अधीन नृत्य है इसीलिए गायन वादन नृत्य में गायन श्रेष्ठ है।

संगीत से सम्बन्धित कुछ आधुनिक विद्वानों के विचार इस प्रकार है–

भातखण्डे जी के अनुसार – गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का समावेश शब्द में होता है। वस्तुतः ये तीनों कलाएं स्वतंत्र है किन्तु गीत प्रधान होने के कारण तीनों का समावेश संगीत में किया जाता है।

डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे जी ने संगीत का अर्थ समझाते हुए 'संगीत–रत्नाकर' के मत का ही समर्थन किया है जिसके अनुसार संगीत की परिभाषा है – संगीत एक अन्विति है, जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश है।

गायन की तीन विधायें होती हैं किन्तु प्रस्तुत अध्याय में सिर्फ सुगम संगीत विद्या के अन्तर्गत आने वाली गेय विधाओं का वर्णन किया है क्योंकि प्रस्तुत अध्याय भारतीय सुगम संगीत की गेय विधाओं से सम्बन्धित है।

सुगम संगीत – ''सुगम संगीत को हम काव्य संगीत के नाम से भी सम्बोधित करते हैं।''

सुगम संगीत के अन्तर्गत आल्हा, लोरी, भजन, त्योहार, आदि विशेष उत्सवों पर गाये जाने वाले गीत, सावन के झूले के गीत, फिल्मी गीत, रेडियो के गीत, भजन, गज़ल, कव्वाली इत्यादि आते हैं। इस संगीत से जन–साधारण का खूब मनोरंजन होता है और इन गीतों को गाने अथवा समझने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन गीतों में लय, स्वर तथा काव्य तीनों का आनंद प्राप्त होता है।

कुछ गीतों में लय के साथ काव्य का भी महत्व है जैसे– भजन, काव्य गीत आदि तथा कुछ गीतों में स्वरों का महत्व अधिक है – जैसे फिल्मी संगीत।

सुगम संगीत की गेय विधाये– गीत, फिल्मी गीत, लोकगीत, कव्वाली, भजन, गज़ल इत्यादि।

गीत – काव्य और संगीत, दोनों एक दूसरे के पूरक है। जहाँ काव्य संगीत का प्रस्तुतिकरण करना हो, वहीं राष्ट्रीय गीत, सामूहिक गान, ईश वन्दना तथा उत्सव गीतों के लिए किस साहित्य का प्रयोग करें। टूटे छन्दों को किस प्रकार जोड़े अथवा केवल आलाप द्वारा ही भाव–प्रदर्शन किया जाय, एक समस्या है। स्वर और लय–ताल बद्ध शब्दों की सुन्दर रचना को गीत कहते हैं। गीत के शब्द सार्थक और निरर्थक दोनों होते हैं। भजन, गीत, ठुमरी तथा ख्याल के शब्द सार्थक होते हैं और तराने के शब्द नोम, तोम, तनन, देरे आदि निरर्थक होते हैं।

ईश्वर–प्रार्थना या भगवान की लीला–सम्बन्धी स्वरूप जो साहित्यिक रचनाएँ ऐसी होती हैं कि किसी ताल में बाँधकर गाई जा सके, उन्हें 'गीत' कहते है। इनमें भाव की प्रधानता रहती है। गीतों में श्रृंगार और करूण रस अधिक पाया जाता है। गीतों में किसी प्रकार का स्वर–विस्तार या तीनों का प्रयोग नहीं होता। आकाशवाणी तथा फिल्मों द्वारा गीत व भजनों का यथेष्ठ प्रचार हुआ है।

गीत की मुख्य विशेषता यह होनी चाहिए कि वह गेय हों तथा गीतों की ध्वनि की स्वरावली ऐसी होनी चाहिए जो स गीत को पूर्ण भाव व्यक्त करने में सक्षम हो अर्थात् गीतों में शब्दों और स्वरों का पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो सके।

फिल्मी गीत – संगीत का उद्भव मानव की उत्पत्ति के साथ ही हुआ है। प्रकृति के पार्श्व संगीत ने मनुष्य को प्रेरणा दी जिससे कलाओं का उदय हुआ। सन् 1930 और 1940 के मध्य फिल्म निर्माण की प्रक्रिया तेज हुई। नाटकों के पात्र और संगीतकार सभी फिल्मों की और आकर्षित होकर उसी के माध्यम से अपनी कला का प्रचार चाहने लगे। बंगाल और महाराष्ट्र ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किये तथा कलकत्ता की न्यू थियेटर्स लिमिटेड और पूना की प्रभाव फिल्म कम्पनी ने उत्कृष्ट फिल्म–संगीत देखने का प्रयास किया। सभी अभिनेता तथा अभिनेत्रियों को अभिनय के साथ–साथ गाना भी पड़ता था।

सन् 1950 के लगभग फिल्म में पार्श्व गायन की परम्परा सुदृढ़ हो गई। फलस्वरूप ऐसे अभिनेता और अभिनेत्रियाँ गीत गाने से बच गये जो अभिनय में तो निपुण थे लेकिन जिनके कण्ठ में मधुरता और गायकी का अभाव था। पार्श्व गायन के बढ़ते कदम सुरीले कण्ठों को फिल्म के क्षेत्र में खींच लाए।

कव्वाली – 'कौल' का अर्थ कथन, वचन, बात, प्रवचन, प्रतिज्ञा या विशिष्ट उक्ति है। 'कौल' को गाने वाला कव्वाल कहा जाता है। कव्वालों की गान–शैली कव्वाली और कव्वालों की गान शैली में गाई जाने वाली गजले ही गेय रूप में 'कव्वाली' कहलाती है। कव्वाली में तान, पल्टा, ज़मज़मा, बोल–बाँट सभी कुछ होता है। प्रसिद्ध ख्याल–गायक उस्ताद तानरस खाँ बहुत अच्छे कव्वाल थे। गज़लों को एक विशिष्ट शैली में गाने वाले कव्वाल सूफियों के साथ हमेशा से रहा करते थे। शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती (मृत्यु 1235 ई0) की सेवा में भी कव्वाल थे। शैख़ कुतुबुद्दीन बख्तयार काफी (मृत्यु 1236ई0) का तो स्वर्गवास ही कव्वाली सुनते–सुनते हुआ था। शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती के जनाज़े के साथ–साथ उनकी वसीयत के अनुसार कव्वाल लोग गाते हुए चल रहे थे।

'गजल' का विषय लौकिक प्रेम है यदि गज़ल के प्रेमपात्र को ईश्वर समझकर भक्ति भावमगन होकर गाया जाए, तो वही कव्वाली है। लौकिक प्रेम या ईश्वरीय भक्ति को किसी सम्प्रदाय का एकाधिकार तो नहीं कहा जा सकता। कव्वाली सुनकर भावमग्न हो जाने वाले, आनन्द में झूमकर नाचने वाले सज्जन चाहे हमीदुद्दीन नागौरी हों अथवा कीर्तन–पदों पर नाचने वाले चैतन्य महाप्रभु हों, दोनों में क्या अंतर है। गज़लों और कव्वालियों का प्रभाव उन–उन स्थानों पर अधिक रहा, जिन–जिन स्थानों पर चिश्ती–परम्परा के सूफी संतो का प्रभाव था। बहमनी सुल्तानों और उनके उत्तराधिकारियों की सभाएँ गज़ल–गायकों के स्वरों से गूँजती रही।

लोकगीत – लोक संगीत पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि 'लोक' शब्द से क्या अभिप्राय है। लोक शब्द पर विचार करते हुए डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक

राष्ट्र का अमर स्वरूप है। डॉ0 कुंज बिहारी दास ने 'लोकगीत' की परिभाषा देते हुए 'लोक शब्द पर भी प्रकाश डाला है।' उनका कथन है कि 'लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहत्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसम्य प्रभावों से बाहर रह कर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।'

''महात्मा गाँधी जी ने लोक–संगीत के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं – **लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती है, उत्सव और मेले, ऋतुयें और परम्परायें गाती है।''**

लोकगीत उन्हें कहते हैं, जो विशेषतः घर–गृहस्थी के मांगलिक अवसरों व विशेष त्योहारों या उत्सवों पर महिलाओं द्वारा नगरों तथा गाँवों में अपनी–अपनी प्रान्तीय या ग्रामीण भाषाओं में गाए जाते हैं। पुरूष गायकों द्वारा गए हुए लोकगीत भी होते हैं। लोकगीतों में हमें भारतीय प्राचीन संस्कृति मिलती है।

भजन– प्रचलित संगीत पर वैष्णव–सम्प्रदाय की महान कृपा है। वैष्णव–मन्दिरों में भगवान के जो लीलागान गाये जाते हैं एवं जो आठों प्रहर और छः ऋतुओं के समयानुकूल लीलागान की परिपाटी दीर्घकाल से चली आ रही है, इस परिपाटी ने संगीत जगत को बड़ा ही अमूल्य दान दिया है। भक्ति सम्प्रदाय के सभी भक्त, कवि जो श्रेष्ठ गायक भी थे। जैसे– सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, रैदास, मीराबाई, गुरूनानक, नरसी मेहता, दयाराम, तुकाराम तथा त्यागराज आदि सभी महान भक्त, श्रेष्ठ कवि और गायक भी थे।

भजन अधिकतर दादरा, कहरवा, रूपक, झपताल, धुमाली, आदि तालों में होते हैं। इसमें मीण, कण, खटका आदि का बहुत महत्व रहता है। भजन अधिकतर पीलू, भैखी, खमाज, काफी, देश आदि चपल रागों में गाये जाते है वैसे ऐसा आवश्यक नहीं कि भजन किसी राग पर आधारित हों। पं0 पलुस्कर से लेकर कई सिने पार्श्व–गायकों तक के भजन और पद प्रसिद्ध है। आजकल भजन गायकी में अनूप जलोटा, हरिओम शरण, नरेन्द्र चंचल, अनुराधा पोडवाल इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हैं। आजकल भजनों का प्रचार भी अधिक है और ये अत्यधिक लोकप्रिय भी है।

उपरोक्त कथन अनुरूप भजन को परिभाषित रूप में हम कह सकते हैं कि जिस काव्य (गीत) में ईश–स्तुति के अन्तर्गत राधा–कृष्णा राम, हिन्दू आध्यात्मिक निर्माण विषयक की चर्चा हो उस काव्य की रचना को भजन या पद कहते हैं। इन पदों को भावानुकूल रागों में स्वर तालबद्ध गाते हैं। वर्तमान में उच्चकोटि के शास्त्रीय गायक मंच गायन प्रदर्शन में गायन कायक्रम के अंत में अधिकतर भजन गायन से अपना गायन प्रदर्शन समाप्त करते है। जैसे– भीमसेन जोशी, कुमार गन्धर्व, लक्ष्मीशंकर, सुश्री किशोरी अमोनकर आदि।

गजल– भारत में तेरहवीं शताब्दी में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने सर्वप्रामि अजमेर में समवेत गान के रूप में गज़ल और रूबाइयों का प्रयोग कव्वाली पद्धति में किया, जो क्रमशः लोकप्रिय होता चला गया। कीर्तन और कव्वाली भजन और नमाज़ की तरह की एक दूसरे के पर्याप्त है। कीर्तनियां और कव्वाल लोगों के घराने आज भी अपनी परम्पराओं के अनुसार, विभिन्न पदों या गज़लों को अत्यंत भावापेश और तन्मयता के साथ 'समवेतगान' के रूप में पेश करते हैं।

उर्दू और फारसी की कविता का एक विशेष प्रकार गज़ल कहलाता है। एक गज़ल में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक ग्यारह शेर होते हैं। सारे शेर एक ही 'रदीफ' और 'काफिए' में होते हैं और प्रत्येक शेर में एक स्वतंत्र भाव होता है। गज़ल का प्रथम शेर 'मत्ला' और अंतिम शेर

'मक्ता' कहलाता है। मक्ते में शायर अपना उपनाम रखता है। गजल का संग्रह 'दीवान' कहलाता है। श्रृंगारपरक होने के कारण काव्य–रसिकों और संगीतानुरागियों को गज़ले परमप्रिय रही हैं और सूफियों को भी। काजी हमीदुद्दीन नागौरी के कव्वाल महमूद ने सुल्तान शम्शुद्दीन इल्तुतमिश (1210–1235ई0) को गजल गाकर मुग्ध कर दिया था। गयासुद्दीन बलवन (1265–1287ई0) के पुत्र मुहम्मद ने शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया के पुत्र शैख़ कदवा को अपनी सभा में निमंत्रित किया था, उस समय अरबी गजलें गाई जाती थीं। कैकुबाद (1287–1290ई0) के युग में तो गली–गली गजल–गायक उत्पन्न हो गए।

'गज़ल' शैली का प्रसार करने मे सूफी सन्तों का बड़ा योगदान रहा है। इन गीतों के माध्यम से इन सन्तों ने विभिन्न धर्मों तथा पंथों के बीच ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस विषय में भारत का उद्वैत तथा संगीत–विषयक दर्शन अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। ग़ज़ल में मानवीय तथा ऐन्द्रिय क्रम के स्थान पर ईश्वर–विषयक दिव्य तथा अतीन्द्रिय प्रेम को उन्होंने स्थान दिया। संगीत के मधु में मिश्रित सूफी तत्व–ज्ञान भारतीयों को सहज पसंद आया।